Golden Research Thoughts
ISSN 2231-5063
Impact Factor : 2.2052 (UIF)
Volume-4 | Issue-3 | Sept-2014 Available online at www.aygrt.isrj.net

बौद्ध धर्म की परिप्रेक्ष्य में महर्षि पतंजलि का योग दर्शन: एक समीक्षात्मक अध्ययन

बालाजी पोटभरे

प्रभारी अनुसन्धान अधिकारी, हर्बल आयुर्वेद अनुसन्धान केंद्र, नागालैंड विश्वविद्यालय, लुमामी, नागलैंड,

सारांश - योग शब्द 'यूज' धातु से बना है,जिसका अर्थ होता है, जुडना, मिलना। आत्मा के परमात्मा में लीन होने के अर्थ में योग को कहा गया हैं । योग दर्शन का अन्तिम उद्देश कैवल्य प्राप्ति है, जिसे अपवर्ग, निर्वाण, मुक्ति, मोक्ष, परमधाम और परमपद भी कहते हैं । महर्षि पतंजलि ने कहा था ---

सत्वपुरुषयोः शुद्धिसाम्ये कैवल्यमिति । (योगसूत्र 3/55)

चित्त और पुरुष की समान शुद्धि होनेपर कैवल्य होता हैं । 'पुरुष' आत्मा को कहते हैं । इस आत्मा (पुरुष) के अपने स्वरूप में अवस्थित, लीन होने की स्थिति को 'मोक्ष' कहते हैं जो कि योगदर्शन का मुख्य उद्देश हैं ।

लेकिन आजकल योग को केवल शारीरिक कसरतों के रूप में देखा जाता है, जोकि गलत धारणा हैं । इस लेख का उद्देश योग के मूल तत्वों के बारें में जानना हैं,जिसका सम्बन्ध मोक्ष प्राप्ति से है, जैसे आत्मा, परमात्मा, ईश्वर , और महर्षि पतंजलि के योग दर्शन पर बौद्ध धर्म का किस तरह से प्रभाव पड़ा हैं |

प्रस्तावना-

आज विज्ञान और तकनीकी के दुनिया में मनुष्य का जीवन भौतिक दृष्टि से सुखकर तो हो गया हैं, लेकिन प्रगत विज्ञान के दुष्परिणाम भी सामने में आ रहे हैं । मानसिक बीमारियाँ तेजीसे फ़ैल रही हैं । मनुष्य का जीवन यंत्रवत हो गया हैं । हम भारतीय खुद को ऋषियों,तपस्वी,योगियों, और तथागतों की भूमि पर होने से गौरवान्वित महसूस करते है, और कहते हैं कि, इतिहास में भारत जगतगुरु के स्थान पर विराजमान था, जब विदेशी लोग पढ़ने के लिये यहाँ नालंदा, तक्षशिला, विक्रमशिला, जैसे विश्वविद्यालयों में आया करते थे । लेकिन आज हमारी परिस्थिति क्या है? "किसी भी धर्म के प्रभाव का अन्दाजा किसी भी देश के लोगों के व्यवहार और उनके रीति-रिवाजों से लगाया जा सकता हैं। यदि हम अपने निकटतम बौद्ध पड़ोसी बर्मा और भारत की तुलना करें तो हमें यह भेद समझ में आ जाएगा । भारत अनगिनत मिथ्या विश्वासों का एक बगीचा बन गया है, जो रोज रोज वृद्धि पर हैं । बर्मी लोगों के भी मिथ्या विश्वास हैं । लेकिन ये ऐसे मिथ्या विश्वास नहीं हैं, जो निम्न स्तरीय हो और नैतिकता के विरुद्ध हो । बर्मी के आँखों के सामने उनका अष्टांगिक मार्ग हर घडी रहता हैं, जो दुखों का अन्त करनेवाला हैं ।"[1]बुद्ध का अष्टांगिक मार्ग(अर्थात सम्यक दृष्टि, सम्यक संकल्प, सम्यक वाणी, सम्यक कर्मान्त, सम्यक आजीविका, सम्यक व्यायाम, सम्यक स्मृति और सम्यक समाधि) सभी मनुष्यों के दुखों का अन्त करानेवाला हैं । "बुद्ध अध्यात्म क्षेत्र के महाभिषक थे, महावैद्य थे, विचक्षण चिकित्सक थे ।"[2] "बुद्ध उसे कहते हैं जिसने बोधि प्राप्त की हैं । बोधि कहते हैं चित्त की वह चैतसिक तथा नैतिक आदर्श स्थिति को जिसे कोई भी केवल अपने मानवी प्रयास से प्राप्त कर सकता हैं ।"[3] बुद्ध की शिक्षा का अन्तिम लक्ष्य "निर्वाण"(मोक्ष) प्राप्ति हैं | "बुद्ध ने जिस दिन बुद्धत्व प्राप्त किया तथा जिस दिन महापरिनिर्वाण प्राप्त किया, उसके मध्य पैंतालीस वर्षों तक जहाँ कहीं, जिस किसी को, जो भी उपदेश दिया, उन समस्त बुद्ध वचनों का संग्रह तिपिटक कहलाया । तीन पिटकों के नाम – विनयपिटक, सुत्तपिटक और अभिधम्मपिटक।"[4]

महर्षि पतंजलि के योगदर्शन का भी अन्तिम लक्ष्य मोक्ष प्राप्ति ही हैं, लेकिन उन्होंने आत्मा को माना है, और आत्मा को परमात्मा में लीन होने के अर्थ में योग को कहा हैं | बुद्ध ने आत्मा को नहीं माना हैं और कहा है कि, किसी नित्य आत्मा में विश्वास करना वह पहला संयोजन हैं , जिस से बिना छुटकारा पाए कोई भी आदमी आर्य अष्टांगिक मार्ग पर पैर रख ही नहीं सकता ।

कहते हैं कि,"पतंजलि के योगसूत्र पर बुद्धवाणी और विपश्यना का स्पष्ट प्रभाव हैं।"[5] इस शोध लेख में हम देखेंगे कि, किस तरह से महर्षि पतंजलि के योगसूत्र पर बुद्ध की शिक्षा का प्रभाव है, उनमें साम्य-भेद किस प्रकार हैं,और आत्मा, ईश्वर के बारें में महर्षि पतंजलि, बुद्ध की क्या धारणाएं हैं |

अध्ययन की आवश्यकता एवं महत्व :

"आज पूरी दुनिया में योग को सम्मान मिला है। हालाँकि कट्टरपंथी ईसाइयों ने इसे हिन्दू धर्म चिन्तन को परोक्ष रूप से बढ़ावा देने का प्रयास बताते हुए आलोचना की। स्कूलों में योग शिक्षा देने के विरुद्ध कैलिफोर्निया (अमेरिका)में पहले ही एक मुक़दमा चल रहा है। यूरोप के बाप्टिस्ट और आंग्लिकन चर्च ने भी स्कुल में योगाभ्यास प्रतिबन्ध करने की मांग की थी। क्रोएशिया के स्कूलों में चर्च के दबाव में योग शिक्षा हटाई गई। ऐसी स्थिति में हिंदुओं का क्या कर्तव्य बनता हैं ? सबसे पहले तो यह कि योगाभ्यास से आगे बढकर सम्पूर्ण योग दर्शन को जानें ।यह समझें कि, यदि योग व्यायाम में इतनी शक्ति हैं तो उस ज्ञान में कितनी होगी जिससे योगसूत्र जैसी कालजयी रचनायें निकली।"[6] स्वामी विवेकानन्दजी ने कहा था," मेरा यह दृढ़ विश्वास हैं कि. जो आधुनिक हिन्दू धर्म कहलाता हैं और जो दोषपूर्ण है, वह अवनत बौद्ध मत का ही एक रूप हैं । हिंदुओं को साफ साफ इसे समझ लेने दो, फिर उन्हें उसको त्याग देने में कोई आपत्ति न होगी । बौद्ध मत का वह प्राचीन रूप, जिसका बुद्धदेव ने उपदेश दिया था और उनका व्यक्तित्व मेरे लिये परम पूजनीय हैं । और तुम अच्छी तरह जानते हो कि, हम हिन्दू लोग उन्हें अवतार मानकर उनकी पूजा करते हैं ।"[7] और उन्होंने यह भी कहा था कि, "हिन्दू धर्म बौद्ध धर्म के बिना नहीं रह सकता।" स्वामी विवेकानन्दजी का यह कहना दर्शाता हैं कि, योग दर्शन के साथ साथ बौद्ध धर्म को भी अच्छी तरह से जानना बहुत जरुरी हैं ।"[8]

पालि(बौद्ध कालीन जनभाषा)भाषा के सन्दर्भ में कहा जाता हैं कि "पालि साहित्य भारतीय वाङ्मय की अमूल्य सम्पदा हैं । अन्धकार से ढके हुए भारतीय साहित्य को सर्वप्रथम पालि साहित्य ने ही प्रकाशित किया । बुद्ध एवं उनके द्वारा प्रवर्तित धर्म एवं संस्थापित संघ की प्रामाणिक जानकारी देता हैं । अतः यह कहना अनुचित न होगा की भारतीय संस्कृति का ज्ञान पालि साहित्य के ज्ञान के बिना अधूरा हैं ।"[9]

ऐतिहासिक दृष्टि से विवेचन:

"ई.स. 600 से ई.स.1200 तक यह 600 साल का काल दार्शनिक दृष्टि से उन्नति की पराकाष्ठा तक पहुंचा हुआ था । इस समय से पूर्व भारत में दर्शन के छह प्रसिद्ध संप्रदायों – न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग, पूर्वमीमांसा और उत्तर मीमांसा (वेदान्त) का पूर्ण विकास हों चूका था। ई.स. 600 से पूर्व तक छहों संप्रदायों के मुख्य मुख्य सूत्र ग्रंथों का निर्माण हों चूका था और उनपर प्रामाणिक तथा उपयोगी भाष्य भी लिखे जा चुके थे।"[10] "पालि साहित्य में बौद्ध संस्कृति के मूलतत्व संगुन्फित हैं । बोधि के प्राप्ति से लेकर महापरिनिर्वाण तक बुद्ध ने लौकिक प्राणियों के कल्याण हेतु जो उपदेश दिये, उनसे ही बौद्ध संस्कृति का स्वरूप ग्रंथन हुआ हैं ।'प्रेयस' की अपेक्षा निःश्रेयस को अधिक महत्व देने के कारण बुद्ध वचनों ने भारतीय संस्कृति की इहलौकिक परम्परा को झकझोर दिया, श्रमण संस्कृति ने ब्राह्मण संस्कृति को पर्याच्छन्न् कर लिया और हमारे जातीय संस्कारों की धारा शताब्दियों तक आमुष्मीकता की भूमियों पर प्रवाहित होती रही । पालि

साहित्य में इन भूमियों का महत्वपूर्ण पर्याकलन उपलब्ध हैं ।"[11] "पालि निश्चित ही तत्कालीन जनभाषा थी और बुद्ध ने अपने उपदेशों को लोक – ग्राह्य बनाने एक लिये उसी का माध्यम अपनाया । मूल बौद्ध साहित्य पालि भाषा में ही प्रणित हुआ हैं ।" [12] "जहाँ एक ओर यह कथन सही हैं की पालि में बौद्ध वाङमय ही बौद्ध वाङमय हैं, वहाँ यह कथन सत्य नहीं की सारा बौद्ध वाङमय पालि में ही हैं । बौद्ध वाङमय पालि मे तो हैं ही, प्रचुर मात्र में संस्कृत में भी हैं और नाम लेने भर के लिये कुछ प्राकृत अथवा अर्धमागधी में भी जैसे "धम्मपद"। किन्तु वह आसानी से उपलब्ध ही नहीं।"[13] "बुद्ध ने सारे उपदेश अपनी मातृभाषा में दिये जो की उन दिनों " कोशली " कहलाती थी । यह उन दिनों के कोशल देश की प्राकृत भाषा थी ।इसमें छान्दस अथवा संस्कृत की कृत्रिमता नहीं थी । बुद्ध की समस्त वाणी को इस प्राकृत भाषा ने सदियों तक पालकर, संभालकर रखा, अतः यह 'पालि' कहलायी । कालांतर में कोशल सहित सारे उत्तर भारत पर मगध सम्राट अशोक का प्रभुत्व हों गया और उसने बुद्ध की शिक्षा के साथ साथ उनकी भाषा भी अपनायी । तब से यह भाषा 'मागधी' कहलाने लगी।"[14] "पालि भाषा ने न केवल हमारी आधुनिक भारतीय भाषाओं को ही प्रभावित किया हैं , उसका प्रभाव सिंहल, ब्रह्मदेश, स्यामदेश की भाषाओं के विकास पर भी पर्याप्त रूप से पड़ा हैं । इतिहास के दृष्टि से भी पालि साहित्य का प्रभुत महत्व हैं । उसके सम्यक अध्ययन से हम बौद्ध कालीन इतिहास और भौगोलिक तथ्यों का बहुत अधिक ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं । धर्म और दर्शन के दृष्टि से भी पालि का अधिक महत्व हैं । हमने अभी तक प्रायः संस्कृत ग्रंथों से ही बौद्ध धर्म और दर्शन का परिचय प्राप्त किया हैं । जो कुछ हालातों में एकांगदर्शी और अधिकांशतः उसके मौलिक स्वरूप से बहुत दूर हैं । इस प्रकार बुद्ध धर्म के मौलिक स्वरूप से हम प्रायः अनभिज्ञ ही रहे हैं।"[15] "बुद्ध के उपदेश तत्कालीन लोकभाषा पालि मे ही होते थे, जो आज हमें त्रिपिटक के रूप में प्राप्त हैं ।"[16] बौद्ध धर्म के प्रभाव के बारें में कहा जाता हैं कि, "नष्ट होता हुआ बौद्ध धर्म, हिन्दू धर्म पर भी गहरा प्रभाव डाले बिना न रहा । हिंदुओं ने बुद्ध को भी विष्णु का नवाँ अवतार मानकर बौद्ध जनता का ध्यान अपने ओर आकर्षित कर लिया ।दोनों धर्मो में इतनी समानता बढ़ गयी की बौद्ध और हिन्दू दंतकथाओं में भेद करना कठिन हों गया । अत्यंत प्राचीनकाल से ईश्वर पर विश्वास रखती हुई आर्य जाती का चिरकाल तक अनीश्वरवाद को मानना बहुत कठिन था । इसी तरह बौद्धों का वेदों पर अविश्वास हिंदुओं को बहुत खटकता था । कुमारिल तथा अन्य ब्राह्मणों ने बौद्धों के इन दोनों सिद्धांतों का जोरों से खंडन आरम्भ किया । उनका यह आन्दोलन बहुत प्रबल था और इसका परिणाम भी बहुत व्यापक हुआ । कुमारिल के बाद ही शंकराचार्य के आ जाने से इस आन्दोलन ने और भी जोर पकड़ा । शंकरदिग्विजय में कुमारिल के द्वारा शंकर को निम्नलिखित श्लोक कहलाया गयाहै।–

भुत्यर्थधर्मविमुखान सुगतान निहन्तु ,
जातं गुहं भुवि भवं तमहं नु जाने ।
अर्थात वेदार्थ से विमुख बौद्धों को नष्ट करने के लिये आप गुह
(कार्तिकेय) रूप से उत्पन्न हुए हैं ऐसे मैं मानता हूँ ।"[17]

स्वातंत्र्यवीर वि. दा. सावरकर ने कहा था, "प्रख्यात मीमांसक और वैदिक कर्मकाण्ड के कट्टर समर्थक कुमारिल भट्ट ने बौद्ध सिद्धान्तों को पराजित करने के लिये,उन्होंने पहले बौद्ध सिद्धान्तों का बौद्ध धर्म के ग्रन्थों(त्रिपिटकों) से अध्ययन किया, बौद्धों जैसा आचरण किया और बाद में बौद्ध सिद्धान्तों के विरुद्ध सिद्धान्तों की रचना कर अपने जीवन को कृतार्थ, ध्येयपूर्ति पाकर, उन्होंने अपने आप को तुषाग्निमें भस्म किया था, आत्मदाह कर लिया था। क्योंकि, उनके मतानुसार बौद्ध सिद्धान्तों को पराजित करने के लिये उनको पाखण्डी बौद्ध ग्रन्थों का अध्ययन और बौद्ध आचरण करना पड़ा था, इसलिए प्रायश्चित्त स्वरूप उन्होंने ऐसा किया था।"[18]

स्वामी विवेकानन्दजी ने अपने मित्र श्री प्रमदा दास को लिखित दिनांक 17.08.1889 के पत्र में उनसे प्रश्न पूछे थे ---

1. "यदि '**जगदव्यापारवर्ज प्रकरणादसंनिहितत्वाच्च**' [19] इस सूत्र के अनुसार किसीको पूर्ण ईश्वरत्व प्राप्त नहीं होता, तो निर्वाण का वास्तव में क्या अर्थ है?
2. वेदान्त – सूत्रों में वेदों के प्रमाण के विषय में कोई कारण क्यों नहीं दिये गये ? पहले तो यह कहा गया हैं कि, वेद परमात्मा के अस्तित्व के प्रमाण हैं और फिर यह बताया गया हैं कि वेद 'परमात्मा से निःश्वसित हैं ' इसलिए प्रमाण हैं। अब यह बताइए कि, पश्चिमी तर्कशास्त्र के अनुसार यह कथन एक अन्योन्याश्रय दोष के समान दोषपूर्ण हैं या नहीं ?
3. जिस परमात्मा ने वेदों का निर्माण किया, उसी ने फिर बुद्धावतार धारण कर उनका खंडन किया। इन धर्मोपदेशों में किसका अनुगमन किया जाय ? इनमें से किसको प्रमाणस्वरूप माना जाय ? पहले को या बादवाले को ? "[20]
4.

स्वामी विवेकानन्दजी ने कहा था,"हम जिसे आधुनिक पण्डितों का अद्वैत दर्शन कहते है, उसमें बौद्धों के भी अनेक सिद्धान्त मिले हुए हैं। अवश्य ही, हिन्दू –अर्थात सनातनी हिन्दू – इस बात को स्वीकार नहीं करेंगे, क्योंकि उनके विचार में बौद्ध नास्तिक हैं । परन्तु वेदान्त दर्शन को जान – बूझकर ऐसा व्यापक रूप देने की चेष्टा की गयी हैं कि,उसमें नास्तिकों के लिये भी स्थान रहे।"[21] योगदर्शन के बारें में कहा जाता है कि, "हिरण्यगर्भो योगस्य वक्ता नान्य: पुरातनः। (महाभारत 12।349।65)

हिरण्यगर्भ सूत्र के आधारपर (जो इस वक्त लुप्त हैं) पतंजलि मुनिने योगदर्शन का निर्माण किया हैं।"[22]

लेकिन यथार्थ दृष्टि से कहा गया हैं कि, "निष्पक्षभाव से बुद्धवाणी पढ़ोगे और अपने हिन्दू शास्त्रों का भी निष्पक्षभाव से अध्ययन करोगे तभी तुम्हें ज्ञात होगा कि,गीता ही नहीं, बहुत पुरातन माने जानेवाले अनेक हिन्दू ग्रन्थ बुद्ध के बाद लिखे गए है, और उन पर बुद्ध की शिक्षा का गहरा प्रभाव हैं।" [23] और स्वामी विवेकानन्दजी ने कहा था "मन्वादी संहिता, बहुत से पुराण और महाभारत के भी अंश अभी उसी दिन के हैं। बुद्ध इनसे बहुत पहले हुए हैं।"[24] "कुछ

लोगों की यह धारणा हैं कि, सारा संस्कृत वाङमय पालि वाङमय की अपेक्षा प्राचीन हैं। ऐसे बहुत ही थोड़े ग्रन्थ हैं जिन्हें बुद्ध पूर्व माना जा सकता हैं। अबौद्ध परम्परा के छह शास्त्रों(सांख्य,योग,न्याय,वैशेषिक,पूर्व मीमांसाऔर उत्तर मीमांसा) में एक भी शास्त्र ऐसा नहीं जिसे बुद्धपूर्व प्रमाणित किया जा सके। वाल्मीकि की रामायण भी बुद्धोतर कालीन है, व्यास का महाभारत भी बुद्धोतर कालीन हैं और अज्ञात नामा लेखक की श्रीमद भगवद्गीता भी बुद्धोतर कालीन हैं।"[25]

साहित्य सर्वेक्षण :पातंजल योग दर्शन और बौद्ध धर्म के सन्दर्भ में विभिन्न भाष्यों ,टीकाओं , शोध प्रबंध , वर्तमान पत्र ,व्याख्याओं का सर्वेक्षण।

शोध के उद्देश :

1.बौद्ध धर्म की मौलिक शिक्षाओं के बारें में जानकारी प्राप्त करना और उसका प्रभाव महर्षि पतंजलि के योगदर्शन पर किस तरह से पड़ा है, उसका विवेचन करना।
2. महर्षि पतंजलि और बुद्ध की दृष्टि से आत्मा और ईश्वर की संकल्पना का विवेचन करना।

दर्शन : "दृश्यते अनेन इति दर्शनम"। जिसके द्वारा देखा जाय अर्थात वस्तु का तात्विक स्वरुप जाना जावे उसे दर्शन कहते हैं।"धर्म, दर्शन और विज्ञान, मानवीय मस्तिष्क से उपजी तीन प्रबल विचार शक्तियां हैं। किन्तु इनका अलगाव – आपसी टकराव मानव जीवन में वरदानों की सृष्टि न कर सका। जब संवेदना, चिन्तन और कर्म ही आपस में टकराते रहेंगे , तब परिणाम संहार के अतिरिक्त क्या होगा ? उज्ज्वल भविष्य की संसिद्धि का सिर्फ एक उपाय हैं – इनका सामंजस्य।"[26] "एक बार बुद्ध से किसी ने पूछा, 'आपकी दार्शनिक मान्यता क्या हैं ?' बुद्ध ने उत्तर दिया, 'मै दार्शनिक मान्यताओंसे ऊपर उठ चूका हूँ।' वस्तुतः दार्शनिक मान्यताएं बुद्धि किलोल अथवा कल्पनाजन्य अंधविश्वासों की उपज होती है, जो कि. सांप्रदायिक भेद- प्रभेदों के ओर वाद- विवादों के लिए अखाड़े का काम करती हैं।"[27] "बेकन की भाषा में ,"स्वयं को दार्शनिक समझने वाला जीव अपने ही बुने तन्तुजाल में फँसता,उलझता, उलझाता रहता हैं। क्योंकि उसने मान रखा हैं , दर्शन सोचने की पद्धति हैं , करने की नहीं। भावना और क्रिया से विलग रहकर वह स्वयं को मानवता का कितना भी हितसाधक कहे , पर उसने स्वयं का भी कितना हित साधन किया हैं – इस पर भी समय ने अमिट प्रश्न लगा दिया हैं।"[28]

बौद्ध धर्म का सामान्य परिचय :"बौद्ध धर्म के संस्थापक सिद्धार्थ गौतम बुद्ध थे। 563 ई.स. पूर्व में लुम्बिनी (जो अभी नेपाल में हैं) में इनका जन्म हुआ था।"[29] "गौतम बुद्ध ईसा के जन्म से लगभग छह सौ वर्ष पूर्व छटी शती के मध्य में (563 ई. पूर्व) लुम्बिनी उद्यान में पैदा हुए थे।"[30]स्वामी विवेकानन्दजी ने बुद्ध के बारें में कहा था,"चरित्र की दृष्टि से बुद्ध संसार में सबसे अधिक महान हुए हैं।उनके बाद हैं–ईसा'।"[31] "बौद्ध धर्म के मुख्य सिद्धान्त है- चार आर्य सत्य, क्षणभंगुरवाद(अनित्यता), प्रतीत्यसमुत्पाद,और अनात्म-भाव। अनित्यता, अनात्म-भाव और निर्वाण को सही तौर पर बौद्ध धर्म के शिलास्तंभ कहा गया हैं। बुद्ध ने कहा कि 'प्रतीत्यसमुत्पाद' का सिद्धान्त न जानने से ही यह प्रजा उलझे सुत-सी, गांठें पड़ी रस्सी- सी, अपाय, दुर्गति और पतन को प्राप्त होती हैं और संसार से पार नहीं हों पाती ।उन्होंने 'प्रतीत्यसमुत्पाद' का सिद्धान्त समझाया – " नाम –रूप के कारण विज्ञान होता है, विज्ञान के कारण स्पर्श, स्पर्श के कारण वेदना, वेदना के कारण तृष्णा, तृष्णा के कारण उपादान, उपादान के कारण भव, भव के कारण जन्म और जन्म के कारण बुढ़ापा,मृत्यु, शोक, विलाप, दुःख, दौर्मनस्य और उपायास होते हैं । इस प्रकार इस केवल दुःख पुंज का समुदय होता हैं ।'प्रतीत्यसमुत्पादं पश्यन्ति ते धर्म पश्यन्ति , यो धर्म पश्यति , सो बुद्धं पश्यति ।' जो प्रतीत्यसमुत्पाद को समझता हैं , वह बुद्ध और बुद्धत्व का दर्शन करता हैं ।"[32] चार आर्य सत्य हैं –दुःख है, दुःख का समुदय है, दुःख का निरोध हैं और दुःख का निरोध करानेवाला मार्ग हैं । दुःखनिरोधगामिनीप्रतिपद --- प्रतिपद का अर्थ मार्ग हैं । यह चतुर्थ आर्यसत्य दुःखनिरोधतक पहुँचानेवाला मार्ग हैं । निर्वाण प्रत्येक प्राणीका गन्तव्य स्थान हैं । उसतक पहुँचानेवाले मार्ग का नाम अष्टांगिक मार्ग हैं ।बुद्ध ने कहा कि –"यह संभव नहीं हैं कि, कोई चार आर्यसत्यों को यथार्थतः जाने बिना दुःखों का पूर्णतया अन्त कर सके। 'चतुब्भी वातेहि असम्पकम्पियो यो अरियसच्चानि अवेच्च पस्सती। अर्थात जिन्होंने आर्यसत्यों का अनुभूतिजन्य दर्शन कर लिया, वे चारोँ ओर से आनेवाली तूफानी हवाओं से अकम्पित रहते हैं ।"[33] सुह्रल्लेखा में नागार्जुन ने कहा हैं ,"शील उसी तरह सर्वोपरि आधार हैं , जैसे पृथ्वी सभी चलाचल वस्तुओं की ।" [34]

महर्षि पतंजलि के योग दर्शन सामान्य परिचय :

"एक स्वस्थ भारतीय परम्परा के अनुसार योगसूत्र और महाभाष्य के रचयिता पतंजलि नाम के एक ही व्यक्ति रहे । महाभाष्य का प्रणयन दूसरी शताब्दी ईसा पूर्व शुंग राजवंश के शासक पुष्यमित्र के राजपुरोहित ने किया था । यह राजपुरोहित पतंजलि नाम के थे । इस प्रकार योगसूत्र का प्रणयन काल भी दूसरी शताब्दी ईसा पूर्व होना विदित होता हैं । गौतम बुद्ध का जीवनकाल छठी शताब्दी ईसा पूर्व हों एक ऐतिहासिक तथ्य हैं । इस परिपेक्ष्य में वे पतंजलि के पूर्ववर्ती

थे ।"[35] "भगवान बुद्ध के लगभग चार सौ वर्ष बाद हुए सम्राट पुष्यमित्र शुंग के पुरोहित महर्षि पतंजलि ने मुख्यतः विपश्यना के आधारपर योगसूत्र लिखा।"[36]

योग शब्द की उत्पत्ति युज धातु से हुई है, जिसका अर्थ हैं जोड़ना । आत्मा का परमात्मा से जुड़ना, मिलन होना।
"योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः ।। (योग 1.2) चित्त की वृत्तियों के निरोध को योग कहते हैं ।
योगान्गऽनुष्ठानादशुद्धिक्षये ज्ञानदीप्तिराविवेकख्याते: ।(योगसूत्र 2।28)
योग के अन्गों के अनुष्ठान से अशुद्धि के नाश होने पर ज्ञान का प्रकाश विवेकख्याति पर्यन्त हों जाता हैं ।
यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारधारणाध्यानसमाधयोऽष्टावन्गानी । (योगसूत्र 2।29)
यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधी ये योग के आठ अंग हैं ।
ईश्वर प्राणिधानाद्वा। (योगसूत्र 1।23)
अथवा ईश्वर प्रणिधान से शीघ्रतम समाधी का लाभ होता है ।"[37]

समीक्षात्मक अध्ययन :बुद्ध के अनुसार ध्यान साधना का लक्ष्य हैं चित्त का ही निरोध है,इसे 'सञ्ञावेदयितनिरोध' भी कहते हैं । योग दर्शन की 'चित्तवृत्तिनिरोध' की तुलना में यह अवस्था बहुत उच्चतर हैं । पतंजलि के योगसूत्र की रचना के बारें में प्रोफेसर ए.बी. कीथ का मत इस प्रकार हैं – "यह एक भ्रामक ग्रन्थ है, जो व्यास द्वारा प्रणित योगभाष्य की सहाय्यता से ही बुद्धिगम्य हों सकता हैं ।व्यास ने इसके वास्तविक आशय को सही ढंग से प्रस्तुत किया या नहीं यह संदिग्ध हैं ।अधिक संभावना इस बात की हैं कि,उसने अपने विचारों के अनुरूप इसे ढाला हैं । प्रोफेसर कीथ का यह मत तथ्यों से एकदम परे नहीं हैं ।यदि ग्रन्थ की व्याख्या केवलमात्र परम्परागत भाष्यकारों की सहाय्यता से की जाय (जिनके प्रमुख व्यास मुनि थे (चौथी शताब्दी))तो ग्रन्थ का मूल पाठ सचमुच कुछ भ्रामक ही लगता हैं ।"[38]योग के चार अंग बतलाये गये हैं – दुःख, दुःख का कारण, दुःख का अवसान तथा दुःख के अवसान का उपाय । इन्हें क्रमानुसार पर्यायवाची शब्दों में व्यक्त किया गया हैं –"हेय, हेयहेतु, हान, और हानोपाय ।(योगसूत्र 2।16,17,25,26), यह विभाजन बुद्ध द्वारा प्रतिपादित चार आर्यसत्यों (अरियसच्च) के अनुरूप हैं ।आर्यसत्य हैं – दुःख, दुःख का कारण, दुःख का अवसान और दुःख के अवसान हेतु आर्य अष्टांगिक मार्ग । इन्हें क्रमानुसार कहा गया हैं – दुक्ख, दुक्खसमुदय, दुक्खनिरोध एवं दुक्खनिरोधगामिनी पटीपदा।(दी.नि. 1/155, महापरिनिब्बान सुत्त) ।"[39] योगसूत्र में कहा गया है—

मैत्रीकरुणामुदितोपेक्षां सुखदुःखपुण्यापुण्य विषयानामं भावनातश्चित्तप्रसादनम ।(योगसूत्र 1/33)

सुख, दुःख, पुण्य, अपुण्य, के प्रति मैत्री, करुणा, मुदिता एवं उपेक्षाभाव भावित करने से मानसिक शांति मिलती हैं ।इन्ही चार गुणों को बुद्ध की शिक्षा में 'अप्पमञ्ञ' (अप्रमाण अवस्था) अथवा 'ब्रह्मविहार' कहा गया हैं । इस अवस्थाओं

का नाम भी उसी क्रम से हैं – मेत्ता, करुणा, मुदिता तथा उपेक्षा ।(विभंग 642) "बुद्ध के समय ध्यानसुख के लिये 'आनन्द' शब्द का प्रयोग नहीं होता था । उसे प्रीतीसुख कहाजाता था । बुद्ध पूर्व वेदों में भी आनन्द शब्द का ऊँचे अध्यात्मतिक अर्थ में प्रयोग नहीं हुआ हैं । वेदों में इस शब्द का प्रयोग गर्हित अर्थ में किया गया हैं । जैसे कि – आनंदाय आनन्दायस्त्रीषुखूं । यजुर्वेद 30।6

यानि कामभोग के आनन्द के लिये स्त्री के साथ मित्रता करो । बुद्ध के समय तक भी आनन्द शब्द हीन अर्थ में ही प्रयुक्त होता था । परन्तु आगे जाकर पतंजलि तक पहुंचते – पहुंचते आनन्द शब्द का उत्कर्ष हुआ और प्रीतीसुख का अपकर्ष । पतंजलि ने बुद्ध द्वारा व्याख्यात प्रथम ध्यान में 'वितर्क' और विज्ञान के साथ प्रीती सुख का प्रयोग न करके आनन्द शब्द का प्रयोग किया हैं ।यथा- वितर्कविचारानन्दास्मितारुपानुगमात सम्प्रज्ञाता । (योगसूत्र 1।17)"[40] योगसूत्र के अनुसार संतोष परमसुख का अपूर्व स्त्रोत हैं -संतोषादनुत्तमः सुखलाभः । (योगसूत्र 2/42)

बुद्धवाणी के अनुसार "संतोष" एक उत्कृष्ट सम्पदा हैं । सन्तुट्ठी परं धनं ।(ध. प.204 सुखवग्गो)
इस तरह से यह सिद्ध होता है कि, योगसूत्र पर बुद्धवाणी का स्पष्ट प्रभाव हैं ।
पतंजलि के अनुसार प्रत्यक्ष ज्ञान, अनुमान और धर्मग्रन्थों का प्रमाण (आगम)प्रामाणिक ज्ञान के आधार होते हैं ।

प्रत्यक्षानुमानागमः प्रमाणनि । (योगसूत्र 2।7) लेकिन बुद्ध ने 'आगम' को प्रामाणिक ज्ञान का आधार स्वीकार नहीं किया हैं । "पालि धर्मग्रन्थों के अनुसार बुद्ध ने जिन छः प्रकार के प्राधिकारों की आलोचना की हैं वे है—१अनुस्सव (सुनी सुनाई बात),२परंपरा (सामान्य परंपरा),३ इति किरा(जनश्रुति),४ पिटक सम्पदा(सामान्य धर्मग्रन्थ),५भव्यरुप्यता(वक्ता की श्रेष्ठता) और ६ समणो नो गरु (वक्ता की प्रतिष्ठा)।"[41] बुद्ध की सारी शिक्षा स्वानुभुतियो पर आधारित है, "शास्त्र वचन प्रमाण" की अन्ध मान्यता पर आधारित नहीं हैं ।

"योगसूत्र में अविद्या की परिभाषा की गयी हैं – दोषपूर्ण संज्ञान के कारण अनित्य, अशुचि, दुःख एवं अनात्म में क्रमशः नित्य, शुचि, एवं आत्म की अनुभूति करना ।'अविद्या' प्रज्ञा के विपरीत स्थितिः अनित्याशुचिदुःखानात्मसु नित्यशुचिसुखात्मख्यातिरविद्या। (योग2।5), (बुद्धवाणी) कहती हैं -अनिच्चे निच्चसञ्ञिनो, दुक्खेच सुखसञ्ञिनो, अनत्तनीच अत्ताती, असुभे सुभसञ्ञिनो ।। (पटि.सं.1/236,विपल्लासकथा),यह परिभाषा बुद्ध की शिक्षा के अंतर्गत विवेचित प्रज्ञा शब्द के विविध पहलुओं की याद दिलाती हैं – अनिच्च, अनत्त, दुःख तथा असुभ (यानी अनित्य, अनात्म, दुःख और अशुचि में नित्य, सुख, आत्म और शुभ- शुचि का भ्रामक ज्ञान होना ।"[42]

"जातिपि दुक्खा आदि की गणना में बुद्ध बुद्ध ने 11 प्रकार की दुःख वेदनाएं गिनायी हैं । इनके अतिरिक्त उन्होंने तीन प्रकार के दुःख बताये हैं ---

1. दुक्खदुक्खता – जो प्रत्यक्ष शारीरिक और मानसिक दुःख हैं उन्हें दुक्खदुक्खत्व कहा हैं ।
2. संखारदुक्खता – कर्म संस्कार के फलस्वरूप प्रकट होनेवाले दुःख को संखारदुःखत्व कहा । प्रबल कर्म संस्कार पुनर्जन्म देने की क्षमता रखते हैं । 31 लोकों में से किसी न किसी लोक में जन्म होगा और दुःखचक्र चलता रहेगा। इसलिये इसे संस्कार दुःखत्व कहा ।
3. विपरिणामदुक्खता – काय और चित्त में जो प्रतिक्षण विपरिणाम यानी परिवर्तन हों रहा है, वह विभिन्न प्रकार के कायिक और चैतसिक दुःखों में परिणत होता रहता हैं । काय और चित्त का जो प्रतिक्षण विपरिणाम हों रहा है, वही अंततः मृत्यु रूपी जीवन के विपरिणाम तक पहुंचाता हैं । इस अर्थ में भी विपरिनाम दुःखत्व कहा गया हैं ।
महर्षि पतंजलि ने दुःख के तीन भेद बतलाये हैं – परिणामतापसंस्कारदुःखैर्गुणवृत्तिविरोधाच्च दुःखमेव सर्व विवेकिनः ।(योगसूत्र 2।15)

बुद्ध ने "दुक्खदुक्खता" का जो अभिप्राय बतलाया है, उसी अर्थ में पतंजलि ने "तापदुःख" बतलाया हैं ।"[43]
महर्षि पतंजलि ने यमनियमादि को योग के आठ अंग माना हैं जबकि बुद्ध ने उन्हें शील के अन्तर्गत माना हैं ।
"सिलेनातिआदिसु यमनियमादिसमादानवसेन सीलं ।"[44]

आत्मा की संकल्पना:

योगसूत्र में एक निर्विकार तत्व 'पुरुष' (आत्मा) के बारें में परिकल्पना की गयी हैं जो किसी भी व्यक्ति के चित्त की समस्त क्रियाओं के बारें में सदैव जागरुक और साक्षी बना रहता है।

'सदा ज्ञाताश्चित्तवृत्तयस्तत्प्रभोः पुरुषस्यापरिणामत्वात।'(योगसूत्र 4.18)

"महर्षि पतंजलिका योग दर्शन मुख्यतः एक जीवन दृष्टि हैं , जिससे मनुष्य इस संसार में सार्थक जीवन जीते हुए निरन्तर अपने उत्थान की ओर बढता हैं और अंततः मानव आत्मा पूर्ण रूप से परमात्मा से मिल कर मुक्ति पाता हैं ।"[45]बुद्ध ने 'पुरुष'(आत्मा) जैसे किसी तत्व की कोई अवधारणा नहीं की ।उनकी दृष्टि में तो शरीर "मनोमय" होता हैं, अर्थात चित्त से अनुप्राणित रहता हैं ।'मनोमयेसु कायेसु सब्बत्थ पारमि गतो'। (अप.थेर.1.2.53)

"तथागत के सदधर्म की शिक्षा हैं कि, यह जीववादी दृष्टिकोण,यह स्थायी आत्मा में विश्वास, सबसे अधिक खतरनाक गलती हैं, सर्वाधिक भ्रामक भ्रम हैं । वह इतना बड़ा चक्कर हैं कि, जो भी कोई इसमें विश्वास करेगा वह उसे निश्चयात्मक रूप से चिन्ता और दुःख के गड्डे में जा गिरायेगा । सक्काया दिठ्ठी , किसी नित्य आत्मा में विश्वास करना वह

पहला संयोजन हैं , जिस से बिना छुटकारा पाए कोई भी आदमी आर्य अष्टांगिक मार्ग पर पैर रख ही नहीं सकता ।"[46] बुद्ध ने कहा- "ब्रह्म या आत्मा नामकी कोई वस्तु नहीं हैं ।"[47]

"अश्वघोष ने अपने श्रद्धोत्पाद सूत्रमें लिखा है, "जितने भी मिथ्या मत है, उनका मूल आत्मा की कल्पना में ही हैं ।"[48] यदि हम आत्म -दृष्टि से मुक्त हों जाये, तो मिथ्या मतों की उत्पत्ति ही असंभव हों जाय । "बौद्ध धर्म न किसी आत्मा को स्वीकार करता हैं और न किसी ब्रह्म को । यह किसी ब्रहम के साथ सम्बन्ध स्थापित करने या उसमें लीन होने की शिक्षा दे ही कैसे सकता हैं? तेविज्ज सुत्त में बुद्ध ने ऐसे आदमी की जो ब्रहम में विश्वास रखता हैं, और उसके साथ सम्बन्ध जोड़ना चाहता हैं , उपमा उस आदमी से दी हैं जो किसी चौरस्ते पर सीढ़ी रखकर की बड़े भवन तक पहुँचना चाहता हैं , जिसे न वह देख सकता हैं और न जिस के बारें में जान सकता हैं कि, वह कहाँ हैं ,कैसा हैं , वह किस चीज का बना हैं और कि,वह वास्तव में कहीं हैं भी या नहीं ? ब्राह्मण वेदों के प्रमाण मानते हैं , वेदों कि प्रामाणिकता वेदों के मन्त्र – द्रष्टा ऋषियों की प्रामाणिकता पर आश्रित करती हैं और ये मन्त्र – द्रष्टा ब्रह्म प्रजापति पर आश्रित हैं । वे अन्धोकी एक कतार के समान हैं, जहाँ प्रत्येक अन्धा दूसरे को पकडे हुए हैं और दूसरे का मार्गदर्शक हैं और उनका मुक्ति मार्ग इतना ही हैं कि, स्तुति करो , पूजा करो और प्रार्थना करो ।बौद्ध धर्म में 'प्रार्थना' नाम की कोई वस्तु नहीं । तथागत ने किसी भी चीज के लिये किसी भी प्रकार की प्रार्थना करने को निषिद्ध ठहराया हैं । जार्ज मैरडिथ के अनुसार सारी प्रार्थना मूर्तियों की लल्लो चप्पो होती हैं और मिथ्या विश्वासों की जनक होती हैं । एक बौद्ध के लिये, लोरसो के कथनानुसर, बहते पानी का शब्द, हवा से हिलते जंगली पेड़ों के पत्तों की आवाज, आकाश में विचरने वाले बादलों की चहल – पहल, जंगली जानवरों की नानाविध कारगुजारियां – एक महान मंत्र हैं और तथागत के जीवन ने जिन सत्यों का अविष्कार किया है, उनकी स्तुति हैं ।"[49]बुद्ध ने स्पष्ट किया हैं कि," मिथ्या धारणाओं का पोषण करने वाले व्यक्ति सदा इन्द्रिय क्षेत्र में बने रहते हैं । इनकी छहों इन्द्रियों पर उनके विषयों का स्पर्श होते रहने से वे वेदनाओं को अनुभव करते रहते हैं और इन वेदनाओं के कारण तृष्णा, तृष्णा के कारण आसक्ति, आसक्ति के कारण भव, भव के कारण जन्म और जन्म के कारण बुढ़ापा, मृत्यु,शोक, विलाप, दुःख, दौर्मनस्य और क्षोभ कि अवस्थाओं में से गुजरते रहते हैं । ये इन्द्रिय क्षेत्र से परे की बात नहीं जानते । यही कारण हैं कि, नाना प्रकार के वाद स्थापित करनेवाले लोग वेदनाओं की यथाभुत जानकारी न होने से हमेशा इन्द्रिय क्षेत्र में बने रहने के कारण तालाब की मछलियों के समान मानों एक ब्रह्मजाल में फँसे रहते हैं । केवल वही व्यक्ति जो वेदनाओं के उदय –व्यय, आस्वाद , दुष्परिणाम और इनके चुंगल से बाहर निकलने के उपाय को प्रज्ञा पूर्वक यथाभूत जानतें है, निर्वाण लाभ कर मिथ्या –धारणाओं से परे की बात को जान पाते है।"[50] "बुद्ध के सिखाए हुए धर्म में अन्ध-श्रद्धाजन्य भक्ति – भावावेश के लिये कोई स्थान नहीं हैं ।"[51]

ईश्वर की संकल्पना :

पतंजलि के योग विज्ञान पद्धति में ध्यान केंद्रित करने के लिये किसी भी तत्व का प्रयोग हों सकता हैं। वह तत्व कोई भी कुछ भी हों सकता हैं। पतंजलि ने ईश्वर का विकल्प भी दिया हैं –ईश्वरप्रनिधानाद्वा वा।(योगसूत्र 1।23) बुद्ध ने स्पष्ट किया है कि, "ईश्वर की मान्यता अकर्मण्यता की ओर ले जाती हैं। वैसे ही जैसे कि, यह मान्यता की जीवन में सुखद, दुःखद, भला-बुरा जो कुछ हो रहा हैं वह अपने पुर्वकर्मों के फलस्वरुप हो रहा हैं। अतः वर्तमान कर्म के लिए मानवी स्वतंत्रता का कोई महत्व ही नहीं रह जाता, क्योंकि सभी वर्तमानकर्म पूर्वकर्म के फलस्वरूप ही घटित हो रहे हैं । यह मान्यता कर्म स्वातंत्र्य का हनन कर, अंततः अकर्मण्यता, निष्क्रियता और अनुत्तरदायिता की ओर ही ले जाती हैं। अहेतुकवाद की भी मान्यता इसी प्रकार अंततः अकर्मण्यता की ओर ले जाती है। बौद्ध धर्म इस बात का आग्रह नहीं करता कि स्थायी मोक्ष प्राप्ति के लिये किसी इलहामी सत्य पर विश्वास करों। व्यक्तिगत विश्वास बौद्ध धर्म की आधारशिला हैं। अनाथपिंडक(श्रावस्ती का धनी सेठ) के साथ चर्चा करते हुए बुद्ध ने उस सेठ को ईश्वर के बारें में इस प्रकार समझाया – ' यदि यह सृष्टि किसी ईश्वर द्वारा बनाई गई होती, तो इसमें कुछ परिवर्तन नहीं होता, कुछ भी वितुष्ट नहीं होता, दुःख – दर्द नाम की कोई चीज न होती। सही या गलत भी कुछ न होता। क्योंकि पवित्र – अपवित्र सभी चीजों का तो मूल वही होता। यदि दुःख और सुख, प्रेम और घृणा जो सभी प्राणियों के चित्त में विद्यमान रहती है, ईश्वर की कृति होती, तो उस ईश्वर में भी दुःख – सुख का निवास होना चाहिए, प्रेम और घृणा का घर होना चाहिए। और यदि उस ईश्वर में ये सब कुछ है, तो उसे परिपूर्ण कैसे मान सकते हैं ? यदि ईश्वर सभी प्राणियों का निर्माता हैं और सभी प्राणियों को अपने निर्माता के सामने सिर झुकाये खड़े रहना है, तो शील के अभ्यास का क्या प्रयोजन ? पुण्य- पाप का करना समान होगा, क्योंकि सभी कर्म तो ईश्वर की ही कृति हैं और अपने कर्ता की दृष्टि में वे समान ही होंगे।यदि यह माना जाय कि, दुःख सुख का कारण कुछ और भी होगा, जिसका कारण ईश्वर नहीं होगा। तब जो कुछ भी विद्यमान हैं उस सभी को बिना कारण के उत्पन्न क्यों न मान लिया जाय ? फिर यदि ईश्वर को कर्ता माना जाय तो प्रश्न उठता हैं कि, क्या उसकी यह रचना किसी सउद्देश हैं या निरुद्देश? यदि माना जाय कि, सउद्देश तो ईश्वर को परिपूर्ण नहीं माना जा सकता, क्योंकि सउद्देश का मतलब हैं कि, किसी इच्छा की पूर्ति। यदि यह कहा जाय कि, उसकी यह रचना बिना किसी उद्देश के हैं, तो या तो वह पागल होगा या किस दूध पिते बच्चे के समान होगा। फिर यदि ईश्वर निर्माता हैं तो लोग उसके सम्मुख यूँही विनम्र भाव से स्थित क्यों नहीं रहते ? वे मज़बूरी की हालत में ही क्यों उससे मिन्नतें प्रार्थनाये करते हैं ? और लोग एक ही ईश्वर की पूजा न कर अनेक देवताओं को क्यों पूजते हैं ? इसलिये ईश्वर का जो विचार हैं वह तर्क कि कसौटी पर खरा नहीं उतरता और इस प्रकार की सभी विरोधी स्थापनाओं का पर्दाफाश किया जाना चाहिए। (अश्वघोष का बुद्धचरित) यदि ईश्वरवादियों के कथनानुसार ईश्वर इतना महान हैं कि, वह आदमी की बुद्धि का विषय नहीं बन सकता, तो इसका मतलब हुआ कि, उसके गुण भी हमारे चिंतन की सीमा के भीतर आबद्ध नहीं हों सकतें। इसका मतलब हुआ कि, न तो हम उसे जान सकते है, और न हम उसपर कर्ता होने का गुण आरोपीत कर सकते हैं।" (बोधिचर्यावतार) जब किसी भी वस्तु के बारें में यह कह दिया जाय की यह असाधारण है, तो उसके बारें में किसी भी बुद्धिवादी तरीके से कुछ भी विचार नहीं किया जा सकता।"[52]

निष्कर्ष :

बौद्ध धर्म की परिपेक्ष्य में महर्षि पतंजलि के योगदर्शन का अध्ययन करने से यह सुस्पष्ट होता हैं कि, बुद्ध की शिक्षा का गहरा प्रभाव महर्षि पतंजलि के योगदर्शन पर पड़ा हैं। महर्षि पतंजलि ने आत्मा, ईश्वर जैसे तत्वों को माना है जिससे, बुद्ध ने बताये हुए अष्टांगिक मार्ग पर मनुष्य चल नहीं सकेगा और उसके शील की हानि होगी, तो सत्वपुरुषयोः शुद्धिसाम्ये कैवल्यमिति ' यह साध्य होगा भी नहीं, और मनुष्य अपने दुःखों से छुटकारा नहीं पा सकेगा।
प्रो. कीथ ने सही कहा - महर्षि पतंजलि का योगदर्शन एक 'भ्रामक' ग्रन्थ हैं।

सन्दर्भ :

1. पी. लक्ष्मी नरसु,(1948)दि इसैन्स ऑफ् बुद्धिझम्(बौद्ध धर्म का सार), हिन्दी अनुवाद, डॉ. भदंत आनंद कौसल्यायन,तीसरा संस्करण, प्रकाशक, मुंशीलाल गौतम अध्यक्ष सिद्धार्थ गौतम शिक्षण व संस्कृति समिति, धन्सारी, जि.अलीगढ, उत्तरप्रदेश,पृष्ठ 63.
2. आचार्य श्री सत्यनारायण गोयन्का,(2012), "क्या बुद्ध नास्तिक थे?" विपश्यना विशोधन विन्यास, इगतपुरी, पृष्ठ 195.
3. पी. लक्ष्मी नरसु,(1948) दि इसैन्स ऑफ् बुद्धिझम्(बौद्ध धर्म का सार), हिन्दी अनुवाद, डॉ. भदंत आनंद कौसल्यायन,तीसरा संस्करण, प्रकाशक, मुंशीलाल गौतम अध्यक्ष सिद्धार्थ गौतम शिक्षण व संस्कृति समिति, धन्सारी, जि.अलीगढ, उत्तरप्रदेश,पृष्ठ 17.
4. अङ्गुत्तरनिकायो,(1998), अट्ठकथा १, पृष्ठ 17, विपश्यना विशोधन विन्यास, इगतपुरी।
5. आचार्य श्री सत्यनारायण गोयन्का, (2012) "क्या बुद्ध नास्तिक थे?" विपश्यना विशोधन विन्यास, इगतपुरी, पृष्ठ 190.
6. . http://celebritywriters.jagranjunction.com/2013/04/06/america-and-yoga-
7. स्वामी विवेकानन्द साहित्य,(2009), अद्वैत आश्रम, बेलूर मठ, कोलकाता,खंड 6,पृष्ठ 318.
8. वही,खंड 1,पृष्ठ 25.
9. डॉ.कोमलचंद्र जैन,(1998), पालि प्रवेशिका,तारा बुक एजेन्सी,वाराणसी,पृष्ठ 13.
10. रायबहादुर महामहोपाध्याय,आदि(1928),मध्यकालीन भारतीय संस्कृति, Central Archeological Library, Deptt.of Archeology, Govt.of India,call no.901.0954,पृष्ठ 87-88.

11. कु. मुकुलरानी त्रिपाठी,(1977), पालि पल्लवनी,चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी,पृष्ठ1
12. वही,पृष्ठ1
13. डॉ. भदन्त आनन्द कौसल्यायन,(2007),31 दिन में आवश्यक पालि,पृष्ठ1.
14. आचार्य श्री सत्यनारायण गोयन्का, (2012), "क्या बुद्ध दुःखवादी थे?" विपश्यना विशोधन विन्यास, इगतपुरी, पृष्ठ 12.
15. भरतसिंह उपाध्याय,(2008),पालि साहित्य का इतिहास,Central Archeological Library, Deptt.of Archeology, Govt.of India,Acc.No.8684,call no.891.3709,पृष्ठ 72-73.
16. डॉ. हरिशंकर शुक्ल,(1993), पालि निबंधावली, तारा बुक एजेन्सी,वाराणसी,पृष्ठ 8.
17. रायबहादुर महामहोपाध्याय आदि, (1928), मध्यकालीन भारतीय संस्कृति, Central Archeological Library, Deptt.of Archeology, Govt.of India,call no.901.0954, पृष्ठ 33.
18. www.loksatta.com, (Marathi news paper), dated 13.03.2011, पृष्ठ 32.
19. इस सूत्र के अनुसार सृष्टि, स्थिति और प्रलय, इन तीनों कर्मो का कर्ता केवल ईश्वर है। जो जीव मुक्त हो जाते है, उनको यह सामर्थ्य नहीं प्राप्त है, लेकिन, अतिरिक्त सभी दैवी शक्तियाँ प्राप्त हो जाती है।
20. स्वामी विवेकानन्द साहित्य,(2009), अद्वैत आश्रम, बेलूर मठ, कोलकाता,खंड 1,पृष्ठ 341-343.
21. वही,खंड 9,पृष्ठ 170.
22. श्री स्वामी ओमानन्द तीर्थ,पातञ्जलयोगप्रदीप,बत्तीसवाँ पुनर्मुद्रण,गीताप्रेस, गोरखपुर,पृष्ठ 128.
23. आचार्य श्री सत्यनारायण गोयन्का, (2012) "क्या बुद्ध नास्तिक थे?" विपश्यना विशोधन विन्यास, इगतपुरी, पृष्ठ 11.
24. स्वामी विवेकानन्द साहित्य, (2009), अद्वैत आश्रम, बेलूर मठ, कोलकाता,खंड6,पृष्ठ 64.
25. डॉ. भदन्त आनन्द कौसल्यायन,(2007),31 दिन में आवश्यक पालि, पृष्ठ m2.
26. असीम कुलश्रेष्ठ, (2008),पातंजल योगसूत्र में वैज्ञानिक अध्यात्मवाद का संप्रत्यय एवं प्रारूप,देव संस्कृति विश्वविद्यालय, हरिद्वार।
27. आचार्य श्री सत्यनारायण गोयन्का, (2012) "क्या बुद्ध नास्तिक थे?" विपश्यना विशोधन विन्यास, इगतपुरी, पृष्ठ 89.

28. असीम कुलश्रेष्ठ, (2008),पातंजल योगसूत्र में वैज्ञानिक अध्यात्मवाद का संप्रत्यय एवं प्रारूप,देव संस्कृति विश्वविद्यालय, हरिद्वार।
29. http://www.upscportal.com/civilservices/courses/hindi/ias-pre/csat-paper-1/itihas/baudh-dharm
30. पी.लक्ष्मी नरसू, (1948)दि इसैन्स ऑफ् बुद्धिझम्(बौद्ध धर्म का सार),हिन्दी अनुवाद, डॉ.भदन्त आनन्द कौसल्यायन, सिद्धार्थ गौतम शिक्षण व संस्कृति समिति, धन्सारी, जि.अलीगढ, विस्तृत देखिये पृष्ठ 20.
31. स्वामी विवेकानन्द साहित्य, (2009), अद्वैत आश्रम, बेलूर मठ, कोलकाता,खंड 7,पृष्ठ 31.
32. पी.लक्ष्मी नरसू, (1948)दि इसैन्स ऑफ् बुद्धिझम्(बौद्ध धर्म का सार),हिन्दी अनुवाद, डॉ.भदन्त आनन्द कौसल्यायन, सिद्धार्थ गौतम शिक्षण व संस्कृति समिति, धन्सारी, जि.अलीगढ, विस्तृत देखिये पृष्ठ 279.
33. आचार्य श्री सत्यनारायण गोयन्का, (2012), "क्या बुद्ध दुःखवादी थे?" विपश्यना विशोधन विन्यास, इगतपुरी, पृष्ठ-16
34. पी. लक्ष्मी नरसु,(1948) दि इसैन्स ऑफ् बुद्धिझम्(बौद्ध धर्मं का सार), हिन्दी अनुवाद, डॉ. भदंत आनंद कौसल्यायन,तीसरा संस्करण, प्रकाशक, मुंशीलाल गौतम अध्यक्ष सिद्धार्थ गौतम शिक्षण व संस्कृति समिति, धन्सारी, जि.अलीगढ, उत्तरप्रदेश,पृष्ठ 215.
35. स.ना.टंडन,(2010), पातंजल योगसूत्र(बुद्धवानी के परिप्रेक्ष में), विपश्यना विशोधन विन्यास, इगतपुरी, पृष्ठ (vii).
36. आचार्य श्री सत्यनारायण गोयन्का, (2012), "क्या बुद्ध दुःखवादी थे?" विपश्यना विशोधन विन्यास, इगतपुरी, पृष्ठ-17.
37. श्री स्वामी ओमानन्द तीर्थ,पातञ्जलयोगप्रदीप,बत्तीसवाँ पुनर्मुद्रण,गीताप्रेस, गोरखपुर,पृष्ठ198.
38. स.ना.टंडन,(2010), पातंजल योगसूत्र(बुद्धवानी के परिप्रेक्ष में), विपश्यना विशोधन विन्यास, इगतपुरी, पृष्ठ (viii).
39. आचार्य श्री सत्यनारायण गोयन्का, (2012), "क्या बुद्ध दुःखवादी थे?" विपश्यना विशोधन विन्यास, इगतपुरी, पृष्ठ-17.
40. वही, पृष्ठ-47.
41. श्री स्वामी ओमानन्द तीर्थ,पातञ्जलयोगप्रदीप,बत्तीसवाँ पुनर्मुद्रण,गीताप्रेस, गोरखपुर,पृष्ठ 356.

42. आचार्य श्री सत्यनारायण गोयन्का, (2012), "क्या बुद्ध नास्तिक थे?" विपश्यना विशोधन विन्यास, इगतपुरी, पृष्ठ-190.
43. आचार्य श्री सत्यनारायण गोयन्का, (2012), "क्या बुद्ध दु:खवादी थे?" विपश्यना विशोधन विन्यास, इगतपुरी, पृष्ठ-46.
44. अङ्गुत्तरनिकायो: सारत्थमञ्जूसा, ततियो भागो, विपश्यना विशोधन विन्यास, इगतपुरी, पृष्ठ-162 .
45. असीम कुलश्रेष्ठ, (2008),पातंजल योगसूत्र में वैज्ञानिक अध्यात्मवाद का संप्रत्यय एवं प्रारूप,देव संस्कृति विश्वविद्यालय, हरिद्वार ।
46. पी.लक्ष्मी नरसू, (1948)दि इसैन्स ऑफ् बुद्धिझम्(बौद्ध धर्म का सार),हिन्दी अनुवाद, डॉ.भदन्त आनन्द कौसल्यायन, सिद्धार्थ गौतम शिक्षण व संस्कृति समिति, धन्सारी, जि.अलीगढ, विस्तृत देखिये पृष्ठ 242.
47. स्वामी विवेकानन्द साहित्य,(2009), अद्वैत आश्रम, बेलूर मठ, कोलकाता,खंड 7,पृष्ठ 31.
48. पी.लक्ष्मी नरसू, (1948)दि इसैन्स ऑफ् बुद्धिझम्(बौद्ध धर्म का सार),हिन्दी अनुवाद, डॉ.भदन्त आनन्द कौसल्यायन, सिद्धार्थ गौतम शिक्षण व संस्कृति समिति, धन्सारी, जि.अलीगढ, विस्तृत देखिये पृष्ठ 242.
49. वही, पृष्ठ 282.
50. आचार्य श्री सत्यनारायण गोयन्का, (2012),दिघ मझिमसार, विपश्यना विशोधन विन्यास, इगतपुरी, पृष्ठ-12.
51. पी.लक्ष्मी नरसू, (1948)दि इसैन्स ऑफ् बुद्धिझम्(बौद्ध धर्म का सार),हिन्दी अनुवाद, डॉ.भदन्त आनन्द कौसल्यायन, सिद्धार्थ गौतम शिक्षण व संस्कृति समिति, धन्सारी, जि.अलीगढ, विस्तृत देखिये पृष्ठ 14.
52. वही,पृष्ठ 216-218.

कृतज्ञता: मैं, आदरणीय महानिदेशक,केन्द्रीय आयुर्वेदीय विज्ञान अनुसन्धान परिषद,नई दिल्ली, इनके प्रति हृदय से कृतज्ञता प्रकट करता हूँ और उनके मार्गदर्शन और सहाय्यता के लिए आभार व्यक्त करता हूँ ।